International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

प्राचीन इतिहास के पुरातात्विक स्रोतः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 राकेश कुमार
इतिहास विभाग

शोध आलेख सार– अतीत की खोज हमेशा इतिहासकारों की जिज्ञासा का विषय रही है। इतिहासकार और अतीत में गहरा सम्बन्ध होता है। इसलिए इतिहासकार अतीत की घटनाओं को विश्वसनीय ढंग से प्राप्त करने तथा उनका तर्कसंगत मूल्यांकन करने के लिए विभिन्न स्रोतों पर निर्भर रहता है। इसके लिए इतिहासकार को उपलब्ध साक्ष्यों, प्रमाणों और तथ्यों का उल्लेख अपने कथन के समर्थन में करना पड़ता है। प्राचीन इतिहास में बार–बार स्रोत सामग्री को यथावत रूप में स्वीकार करना संभव नहीं है क्योंकि अतीत की घटनाओं के बारे में इतिहासकार भी पूर्वाग्रह ग्रस्त हो सकता है। जैसे अशोक की कलिंग विजय की घटना इतिहास में विश्वसनीय मानी जाती है, परन्तु मौर्य अभियान के समय पराजित शासक के बारे में इतिहासकार मौन हैं क्योंकि इसके बारे में कोई ठोस सामग्री उपलब्ध नहीं है। इसी तरह हड़प्पा संस्कृति की खोज से पहले इस सभ्यता के बारे में किसी को कुछ पता नहीं था और किसी भी प्राचीन भारतीय इतिहास के ग्रन्थ में इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं थी। यदि वर्तमान सन्दर्भ में इस सभ्यता के बारे में समझा जाये तो कुछ न कुछ अध्ययन सामग्री अवश्य उपलब्ध है। भारत के प्राचीन इतिहास के पुरातात्विक स्रोतों में खुदाई से प्राप्त अवशेष, अभिलेख, मुद्रा और शिल्पकर्म शामिल हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं स्रोतों का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द– पुरातत्व, उत्खनन, अभिलेख, मुद्रा, शिल्पकर्म, इतिहासकार।

भूमिका– वस्तुतः इतिहासकार को किसी भी घटना का परिचय देते समय उपलब्ध स्रोतों की विश्ववसनीयता के प्रति सजग रहना पड़ता है। उसे उपलब्ध सामग्री को यथावत् रूप में स्वीकार करते हुए हिचक महसूस होती है। कई बार तो ठोस प्रमाणों

के अभाव में इतिहासकार के द्वारा मन्तव्य तक देना भी असंभव हो जाता है। कई परिस्थितियों में पुरातात्विक सामग्री अधूरी और त्रुटीपूर्ण होती है। कई बार इतिहासकार स्वयं का मन्तव्य देकर इतिहास की दिशा ही बदल देते हैं। इस तरह आदिकालीन भारतीय इतिहास के अनुसंधान में सबसे बड़ी समस्या निश्चित कालानुक्रम के आधार पर रचित प्राचीन इतिहास ग्रंथों का अभाव है। सुदूर अतीत में लिखित इतिहास ग्रंथों की संख्या सीमित होने के कारण आदिकालीन इतिहासकार को प्रमुख रूप से पुरातात्विक साक्ष्यों पर निर्भर रहना पड़ता है।

पुरातत्व– प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने में प्राचीन स्थलों से प्राप्त पुरावस्तुओं का काफी महत्व है। जब इतिहासकार के पास कोई लिखित सामग्री उपलब्ध न हो तो उस स्थिति में पुरातात्विक अवशेषों के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचता। चूंकि लिपि ज्ञान से पहले जिस किसी मानव समाज का लम्बा इतिहास है, उसी तरह भारत का इतिहास भी उसका अपवाद नहीं है। लिपि काल से पहले का इतिहास प्रागैतिहासिक काल के रूप में जाना जाता है। इसका अध्ययन करने का सर्वोत्तम तरीका पुरातात्विक सामग्री है। इस सामग्री की मदद से प्राचीनतम काल से लेकर लगभग 6ई0 पूर्व तक की जानकारी उपलब्ध होती है। पुरातत्वविदों ने इसके लिए अनुसंधान और उत्खनन कार्य को महत्व दिया है। अनुसंधान के रूप में जो पुरातात्विक क्रियाकलाप हैं उसमें सीधा–सीधा खनन कार्य नहीं रहता, बल्कि इसके द्वारा प्राचीन स्थलों की उत्खनन योग्यता का निर्धारण होता है। इसके लिए पुरातात्विक विभाग द्वारा प्राचीन क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जाता है और समस्त पुरानी चीजों का संग्रह करके खोज के कार्य को आरम्भ किया जाता है। पुरातत्वविदों की संतुष्टि के बाद ही पुराने स्थल की खुदाई शुरू की जाती है और इसके लिए भारतीय पुरातत्व विभाग की अनुमति लेनी पड़ती है।

भारत में पुरातत्वविदों द्वारा उत्खनन कार्य के लिए अनुलंब रूप तथा क्षैतिज पद्धतियों का प्रयोग होता है। इसके लिए पुरातत्वविदों को मानव बस्तियों की

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

प्राचीनता का निर्धारण करना पड़ता है। इसके लिए एक क्रमबद्ध जांच पड़ताल करके इन बस्तियों में मानव के अस्तित्व का पता लगाया जाता है। भूगर्भशास्त्र की मदद से पृथ्वी के भीतर सांस्कृतिक स्तरों में जिसकी स्थिति जितनी गहराई में है वह स्तर अधिक प्राचीन है और जो वर्तमान भूस्तर के निकट है वह नया है। इससे मानव बस्तियों के काल का निर्धारण किया जाता है। खड़े या अनुलंब रूप वाले खनन कार्य से प्राचीन क्षेत्र की सूचना और काल क्रम का पता चलता है। जिस क्षेत्र में लिखित सामग्री उपलब्ध न हो तो वहां इस प्रकार का उत्खनन का तरीका ही सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु किसी पुरानी वस्तु या मानव बस्ती कि प्राचीनता को प्रमाणित करना ही पुरातत्वविदों का उद्देश्य नहीं है। इसके साथ–साथ उनके द्वारा प्राचीन मानव समाज की जीवन यात्रा, खान–पान, गृह निर्माण, परिधान या पहनावा, धर्म विश्वास, सामाजिक मान्यताओं आदि को भी स्पष्ट करना पड़ता है। काल निर्धारण के अलावा भी विस्तृत समाज का परिचय देने के लिए क्षैतिज खनन को ही महत्व दिया जाता है। मध्य पाषाण युग के सबसे प्राचीन स्थल बागौड़ (राजस्थान) की प्राचीनता का पता इसी पद्धति से चलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि किस तरह मानव समाज शिकारी जीवन छोड़कर पशुपालन कार्य में लग गया। हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन कार्य में भी यही पद्धति प्रयोग में लाई गई और इसके द्वारा इन लोगों के आवासों, नगर की सुरक्षा व्यवस्था, जल निकासी का प्रबन्ध, धार्मिक जीवन आदि पर प्रकाश डाला गया है।

पुरातत्व के साथ पुरातत्वविदों ने कई शास्त्रों को ज्ञानबद्ध रूप से जोड़ दिया है। आकाश से लिए गए चित्र भी इसमें काफी मदद करते हैं। प्राचीन वस्तुओं के काल निर्धारण के लिए कार्बन 14 विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा पुराने बर्तन, अन्न के दाने आदि की परीक्षा करके विश्वसनीय काल निर्धारण का कार्य होता है। इस विधि के प्रयोग द्वारा पाकिस्तान के मेहरगढ़ तथा उत्तरप्रदेश के कोलडीहा उत्खनन कार्य से प्राप्त अवशेषों के माध्यम से सटीक जानकारी प्राप्त हुई है। जिस

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

युग के लिए लिखित स्रोत सामग्री मिलती है उसमें भी पुरातत्व स्रोतों का विशेष महत्व है। भारतीय इतिहास में लौह उपकरणों के बारे में सटीक जानकारी केवल मात्र साहित्यक तथ्यों तथा अभिलेखों की सहायता से प्राप्त करना कठिन है। इसके काल निर्धारण के लिए पुरातात्विक स्रोतों की भी मदद लेनी पड़ती है।

अभिलेख– भारत के प्राचीन इतिहास के सन्दर्भ में जब कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध न हो या उनकी संख्या सीमित हो तो उस स्थिति में अभिलेखों का महत्व बढ़ जाता है। भारत में विभिन्न वस्तुओं पर अंकित अभिलेखों की संख्या पाषाण एवं ताम्र रूप में है। उपलब्ध मुद्राओं पर भी तत्कालीन शासक का नाम, उपाधि एवं देवी–देवता का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः भारत में लिपि को उत्कीर्ण करने का सबसे प्राचीन उदाहरण हड़प्पा सभ्यता में ही मिलता है। परन्तु इस सभ्यता की लिपि को सर्वसम्मत रूप से नहीं पढा जा सका है। भारतीय इतिहास में अभिलेखों में स्पष्ट रूप से मौर्य सम्राट अशोक के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। अशोक के अभिलेखों में ब्राह्मी और खरोष्ठी दो प्रकार की लिपियों का प्रयोग हुआ है। आधुनिक भारत की अधिकांश लीपियां ब्राह्मी लिपि से ही निकली हैं। अशोक और मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं समकालीन स्रोत सामग्री उपलब्ध है। अशोक की कलिंग विजय शासन व्यवस्था, धर्म नीति को समझने के लिए इन अभिलेखों की उपयोगिता सर्वविदित है। उत्तम पुरूष में व्यक्त यह राष्ट्रीय प्रशासनिक आदेश भारतीय अभिलेखों के इतिहास में विरल हैं। अशोक के राज्यकाल में अभिलेख उत्कीर्ण का कार्य कई शताब्दियों तक चलता रहा और मौर्य काल में बहुसंख्या में अभिलेखों का उत्कीर्ण प्राकृत भाषा में किया गया। 200ई0 पूर्व से 300ई0 पूर्व तक के समय में सांची, भरहुत, मथुरा, तक्षशिला, नासिक, अमरावती आदि से प्राकृत भाषा में रचित बड़ी संख्या में लघु लेख खोजे गए हैं और ये सब मुख्य रूप से दान लेख हैं। सांची के प्रसिद्ध स्तूप के चारों तरफ पत्थरों का एक घेरा है और इसमें लगभग 630

दान के वकतव्य हैं। इन अनमोल दान लेखों का समूह भारत में बौद्ध धर्म और जैन धर्म की स्थिति को स्पष्ट करने में अहम् भूमिका अदा करता है।

राजकीय अभिलेखों में विभिन्न प्रतापी राजाओं की शौर्य गाथाओं को अभिलेखों के रूप में उत्कीर्ण कार्य किया गया है। इसमें प्रशस्तियों को विशेष मान्यता मिली हुई है और कलिंग के शासक खारवेल की हाथीगुफा प्रशस्ति सबसे प्राचीन है। मौर्योत्तर काल में कलिंग के राजनैतिक वर्चस्व का मुख्य कृतत्व खारवेल का ही मिलता है। संस्कृत भाषा में रचित शक क्षत्रप प्रथम रूद्रदामन की जूनागढ़ प्रशस्ति सबसे प्राचीन है। अनुमानतः 7वीं सदी तक के राजकीय अभिलेख प्रायः पाषाण पर ही उत्कीर्ण हैं। चूंकि धातुओं पर लेख उत्कीर्ण की प्रथा भी प्रचलित थी और 5वीं शताब्दी के आस–पास राजकीय आदेश मुख्य रूप से ताम्रपट्टी पर ही जारी होते थे और ये भू–सम्पति के हस्तातंरण होते थे। भारत के आदिकाल के राजवृत की चर्चा के लिए एक पाषाण लेख और ताम्र पट्टियों का उपयोग लम्बे समय तक होता रहा। राष्ट्रकूट राजा तृतीय कृष्ण के कारहाड़ ताम्र शासन के बारे में एक ताम्र अभिलेख महाराष्ट्र के कारहाड़ में मिला है। इससे पता चलता है कि राजा का अधिकार उस समय तमिलनाडू तक फैला हुआ था और राजा ने 949ई0 में तक्कोलम के युद्ध में चोल राज प्रथम प्रातंक को हराया था। अभिलेखों का उपयोग वास्तव में राजनीतिक इतिहास के पुनरोद्धार के लिए किया गया है, फिर भी प्राचीन अभिलेखों की उपयोगिता रहने पर भी सम्पूर्ण स्रोत सामग्री की दृष्टि से इनकी अपनी विशेष सीमा है, क्योंकि इन पर अंकित अक्षरों को पढने का कार्य काफी कठिन है तथा वर्ष, तिथि निश्चित न होने के कारण इतिहासकारों में काल निर्धारण के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। अतः अभिलेखों की प्रमाणिकता के बारे में इतिहासकारों को सजग रहकर कार्य करना पड़ता है।

मुद्राएं– मुद्राओं का भी प्राचीन इतिहास के स्रोतों के रूप में विशेष महत्व है। प्राचीन भारत में मुद्रा का प्रचलन लगभग छठी शताब्दी से माना जाता है। इस समय विभिन्न

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

प्रकार की धातुओं वाली मुद्राऐं प्रचलित होती थी। परन्तु अधिकांश मुद्राओं पर किसी शासक का नाम अंकित न होने के कारण इन्हें केवल धातु के टुकड़े माना जाता है। मुद्रा शास्त्र के विशेषज्ञों के अनुसार यह जातीय चिन्ह हैं और इनमें अधिकांश चांदी और तांबे की मुद्राएं हैं। भारत में शासक के नाम और आकृति से युक्त मुद्रा यूनानी राजाओं के समय से प्रचलित जान पड़ती हैं। भारत में स्वर्ण मुद्रा की शुरूआत कुषाण राजा बीम कडफिसेस के शासनकाल से दिखाई देती है। इतिहासकार मुद्राओं को साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त करते रहे हैं। प्राचीन मुद्राओं को छोड़कर बाद की सभी मुद्राओं पर किसी न किसी राजा का नाम अंकित है। मौर्य काल में उपमहादीप के उत्तरपश्चिमी क्षेत्रों में यूनानी राजाओं के शासन के बारे में मुद्राओं से ही जानकारी मिलती है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों की चांदी की मुद्राओं के स्थान पर अपनी मुद्रा प्रचलित की। जिससे पता चलता है कि भारत में 5वीं सदी में गुप्त राजाओं का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की एक श्रेणी की मुद्राओं पर शेर का शिकार करते हुए राजा का चित्र अंकित है। भारत में शेर गुजरात के क्षेत्र में पाये जाते थे। अतः इससे पता चलता है कि उस समय गुजरात भी गुप्त साम्राज्य का हिस्सा था। मुद्राओं के आधार पर ही पता चलता है कि भारत में 5वीं सदी में वस्तु विन्मय प्रणाली की जगह मुद्राओं के माध्यम से व्यापार शुरू हो चुका था। इस तरह मुद्राऐं वाणिज्य व्यवसाय के माध्यम से भारत के अलग–अलग भागों में पहुंच गई। यही कारण है कि भारत के प्राचीन इतिहास के बारे में मुद्राओं को भी पुरातात्विक महत्व का माना जाता है।

शिल्पकर्म– शिल्प सामग्री मुख्य रूप से मूर्ति कला, स्थापत्य एवं चित्रकला के रूप में पाई जाती है। मूर्तिकला के माध्यम से प्राचीन भारतीय शिल्पियों ने प्रतिमा निर्माण का कार्य किया। मूर्ति कला के क्षेत्र में गंधार, मथुरा, अमरावती एवं गुप्तशैली का विशेष महत्व रहा है। धातु शिल्प के क्षेत्र में कांस्य धातु का प्रयोग होता रहा है। चोल राज्य काल में मिलने वाली मूर्तियां कांसे से बनी हुई हैं। मिट्टी की मूर्तियां केवल

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

प्रागैतिहासिक काल से ही प्रचलित रही हैं। प्राचीन शिल्प शास्त्र में चित्रकला के बारे में भी कुछ उल्लेख हुआ है। भारत की चित्रकला की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति अजन्ता की गुफाओं में उपलब्ध है। इसके साथ–साथ चोल शासनकाल के एक मन्दिर के भीतर भी चित्रकला के अवशेष हैं। धार्मिक ग्रन्थों को भी छोटे–छोटे चित्रों के माध्यम से सजाने की कला भी प्रचलित रही है। मूर्तिकला और चित्रकला केवल शिल्प के इतिहास के लिए ही नहीं बल्कि धर्म की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री है। भारतीय समाज की विविध लौकिक दिशाओं में भी ये दोनों कलाऐं अभिव्यक्त हुई हैं। हल जोतते किसान अट्टालिकाओं से सुशोभित नगर के दृश्य युद्ध के दृश्य, मल्लयुद्ध करते पहलवान, आदि का वास्तविक निरूपण मूर्तियों और चित्रों के माध्यम से हुआ है। इसके साथ–साथ वास्तुकला का भी अपना विशेष पुरातात्विक महत्व है। हड़प्पा सभ्यता के शस्यागार एवं पाटलीपुत्र में मिले मौर्य प्रासाद (महल) के अवशेष इसका प्रमुख उदाहरण हैं। धार्मिक स्थापत्य की दृष्टि से स्तूपों का विशेष महत्व है।

सारांश– इस तरह भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन पुरातात्विक स्रोतों से उपलब्ध सामग्री पर आधारित है। इसमें पुरातात्विक महत्व की वस्तुओं का विशेष महत्व है। इसके लिए उत्खनन कार्य तथा अनुसंधान कार्यों के द्वारा इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है तथा भारत में किसी भी प्रकार के उत्खनन कार्य के लिए पुरातत्व विभाग की अनुमति लेना आवश्यक है। जहां इतिहास की जानकारी देने वाले ग्रंथ उपलब्ध न हों तो वहां अभिलेखों, मुद्राओं तथा शिल्प कर्म की उपयोगिता बढ जाती है।

सन्दर्भ सूची–

1. सतीशचन्द्र काला, सिन्धु सभ्यता, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, 1955.
2. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी, 1967.
3. धर्मपाल अग्रवाल एवं पन्नालाल अग्रवाल, भारतीय पुरैतिहासिक पुरातत्व, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1975.

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

4. भरतलाल चतुर्वेदी, महाभारतकालीन समाज व्यवस्था, विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981.
5. द्विजेन्द्र नारायण झा, प्राचीन भारतः सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
6. डी.एन.झा, प्राचीन भारतः एक रूपरेखा, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005.
7. प्रशान्त गौरव, प्राचीन भारत, लगभग 600ई0 तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
8. रणवीर चक्रवर्ती, भारतीय इतिहास का आदिकाल– प्राचीनतम पर्व से 600 ई0 तक, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012.
9. गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतः इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.